ज्ञान, कर्म और भक्ति : मोक्ष के त्रिविध मार्गों की दार्शनिक विवेचना

DOI: https://doi.org/10.63345/ijrsml.v14.i1.1

डॉ रचना जयसवाल

सहायक प्राध्यापक

दर्शनशास्त्र विभाग

गंगा देवी महिला महाविद्यालय

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

rachanaj0602@gmail.com

सारांश : भारतीय दर्शन में मानव जीवन के लिए चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को अनिवार्य माना गया है, जिसमें मोक्ष को मनुष्य का चतुर्थ और सर्वोच्च पुरुषार्थ माना गया है। अन्य तीन पुरुषार्थों को मोक्ष प्राप्ति के साधनों के रूप में स्वीकार किया गया है। मोक्ष की अवस्था में सभी प्रकार के दुःखों का पूर्ण नाश हो जाता है। भारतीय दर्शन में मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक रूप से परिष्कृत करने का प्रयास भी करते हैं। परिणामस्वरूप कुछ दर्शन के अनुसार आत्म-ज्ञान या तत्व-ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन है, जबकि कुछ के अनुसार निष्काम कर्म द्वारा भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ दर्शन भक्ति को मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए मुख्य तीन मार्गो का विवेचन किया गया है : १)ज्ञान-मार्ग, २) कर्म-मार्ग और ३) भक्ति-मार्ग। भगवद्गीता में इन तीनों मार्गों को आवश्यक और परस्पर पूरक माना गया है। व्यक्ति अपने स्वभाव और क्षमताओं के अनुसार इनमें से किसी एक मार्ग का अनुसरण करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों मार्ग ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य शब्द: पुरुषार्थ, आत्म-ज्ञान / तत्त्व-ज्ञान, निष्काम कर्म, भक्ति-मार्ग मोक्ष-प्राप्ति

प्रस्तावना: "भारतीय मूल के सभी धर्मों में "मोक्ष"या "मुक्ति"की अवधारणा किसी-न-किसी रूप में वर्णित है। इन सभी धर्मों में सामान्य तौर पर कर्म संसार-ज्ञान-मुक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है।"[1] ऐसा समझा गया है कि जीवन-मरण का कोई "चक्र"है। बार-बार जन्म और मृत्यु के इस "चक्र"को ही "संसार"कहा गया है, और इसे एक "बन्धन"बतलाया गया है। जीवन-मरण के इस 'चक्र' से छुटकारा पाने की ही "मुक्ति"या "मोक्ष" है। जीवन-मरण के चक्र के कारण, उससे मुक्ति के उपाय और मुक्ति के बाद की स्थिति क्या और कैसी होगी-इनके बारे में विस्तार में जाने पर इन धर्मों के बीच अन्तर है।

"यद्यपि भौतिकवादी चार्वाक दर्शन को छोड़कर मोक्ष को सभी दर्शनों में स्वीकार किया गया है, किन्तु मोक्ष की अवस्था और उसके स्वरूप को लेकर भारतीय दार्शनिकों में पर्याप्त मतभेद पाए जाते हैं।"[2] कुछ उपनिषदों में जीव और ब्रह्म की साम्यावस्था को मोक्ष माना गया है जबकि अन्य उपनिषदों में जीव और ब्रह्म का पूर्ण तादात्म्य में ही मोक्ष है। इन मतभेद के होते हुए भी सभी उपनिषदों में मोक्ष को एक पूर्णतः आनंदमयी अवस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। "न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार मोक्ष की अवस्था में दुःख का पूर्ण और नितान्त अभाव रहता है। इनके अनुसार दुःख का आत्यन्तिक विनाश, अर्थात् आत्मा का समस्त दुःखों से पूर्णतः मुक्त हो जाना ही मोक्ष अथवा अपवर्ग है। न्याय–वैशेषिक की भाँति सांख्य और योग दर्शन भी मोक्ष को मानव-जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हैं। सांख्य आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति को ही मोक्ष मानता है, न कि पूर्ण आनंद की अवस्था को। सांख्य का मत है कि मोक्ष की प्राप्ति के पश्चात् पुरुष में किसी प्रकार का आनंद विद्यमान नहीं रहता। ऐसा मुक्त पुरुष संसार में रहते हुए भी उसके बंधनों से ऊपर उठ जाता है और सुख-दुःख से अप्रभावित रहता है। मुक्ति के प्रकार के विषय में सांख्याचार्य विज्ञान भिक्षु से मतभेद के होते हुए भी सभी सांख्याचार्य इस बात पर

सहमत हैं कि सभी सांसारिक बंधनों और दुःखों का पूर्ण विनाश ही मोक्ष है।"[3]

"मोक्ष-संबंधी दृष्टिकोण के संबंध में प्रारम्भिक मीमांसा दर्शन में स्वर्ग को ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया था। मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक जैमिनी ने अपने मीमांसा-सूत्र में तथा उनके भाष्यकार शबर स्वामी ने अपने शबर-भाष्य में मोक्ष का कोई उल्लेख नहीं किया है। उनके मतानुसार वेदों में वर्णित यज्ञ-यागादि कर्मों का विधिपूर्वक अनुष्ठान करना ही मनुष्य का धर्म है, जिसके फलस्वरूप वह स्वर्ग-सुख की प्राप्ति कर सकता है। परन्तु कालान्तर में मीमांसा दर्शन के परवर्ती आचार्यों—जैसे प्रभाकर, कुमारिल भट्ट, शालिकनाथ और पार्थसारथी मिश्र ने अन्य भारतीय दर्शनों के प्रभाव में मोक्ष की समस्या पर गंभीरता से विचार किया और मोक्ष को ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार कर लिया। कुमारिल भट्ट ने मोक्ष की परिभाषा देते हुए कहा है—

प्रपञ्च-सम्बन्ध-विलयो मोक्षः, अर्थात् इस प्रपञ्चमय संसार के साथ आत्मा के सम्बन्ध का पूर्ण विनाश ही मोक्ष या मुक्ति है।"[4]

"मोक्ष के स्वरूप के विषय में अद्वैत वेदांत का मत अब तक वर्णित सभी दर्शनों से कुछ भिन्न है। अविद्या और कर्मों के पूर्ण विनाश द्वारा जन्म–मरण के सांसारिक चक्र से मुक्ति प्राप्त करना ही मोक्ष है।"[5] जहाँ शंकर जीव-ब्रह्म के पूर्ण अभेद को मोक्ष मानते हैं, वहीं रामानुज इस मत को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार मोक्ष प्राप्ति के पश्चात जीव ईश्वर में विलीन नहीं होता, बल्कि ईश्वर के स्वरूप और गुणों को प्राप्त करके उसके समान हो जाता है। इस प्रकार मोक्ष की अवस्था में भी जीव और ईश्वर का भेद बना रहता है, यद्यपि जीव सभी कर्मों और इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। भारतीय दर्शनों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न मोक्ष-सिद्धांतों में गहरे वैचारिक मतभेद हैं।

मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग

भारतीय दर्शनों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए अलग-अलग मार्गों का प्रतिपादन किया है। चार्वाक को छोड़कर न्याय वैशेषिक, वेदांत, सांख्य, योग, जैन और बौद्ध दर्शन सभी ने मोक्ष-प्राप्ति के लिए अपने-अपने विशिष्ट साधनों का विवेचन किया है, जो उनके तत्त्वमीमांसीय और नैतिक दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपरा में मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान और नैतिक आचरण जैसे विविध मार्ग सुझाए गए हैं। भारतीय दर्शन में कुछ दर्शन के अनुसार आत्म-ज्ञान या तत्व-ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन है, जबकि कुछ के अनुसार निष्काम कर्म द्वारा भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ दर्शन भक्ति को मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं। "इस प्रकार भारतीय दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए मुख्य तीन मार्गो का विवेचन किया गया है —१)ज्ञान-मार्ग – आत्मा और तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष का मार्ग। २) कर्म-मार्ग – निःस्वार्थ कर्म और धर्म पालन के द्वारा मोक्ष। ३) भक्ति-मार्ग– ईश्वर, गुरु या सर्वोच्च सत्ता के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति के माध्यम से मोक्ष।"[6] भगवद्गीता में इन तीनों मार्गों को आवश्यक और परस्पर पूरक माना गया है। व्यक्ति अपने स्वभाव और क्षमताओं के अनुसार इनमें से किसी एक मार्ग का अनुसरण करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों मार्ग ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

१) ज्ञान-मार्ग – भारतीय दर्शन लगभग सभी मत अविद्या, अज्ञान या अविवेक को समस्त बंधनों और दुःखों का मूल कारण मानते हैं। मोक्ष या मुक्ति के लिए इस अविद्या का नाश अनिवार्य है, और यह अविद्या केवल आत्म-ज्ञान या तत्व-ज्ञान द्वारा नष्ट हो सकती है। इसलिए ज्ञान-मार्ग का विशेष महत्व है। सांख्य, योग, अद्वैत वेदांत, न्याय और वैशेषिक दर्शनों द्वारा इसे मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है। "सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष (आत्मा) त्रिगुणातीत और शुद्ध चैतन्य स्वरूप का होता है। लेकिन अविद्या या अविवेक के कारण जब पुरुष अपने आप को प्रकृति और उसके गुणों (संसारिक वस्तुएँ, कर्म, अनुभव) से जोड़कर कर्त्ता, भोक्ता आदि मानने लगता है, तो वह संसारिक बंधनों में फँस जाता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए इस अविवेक का नाश आवश्यक है। यह नाश केवल आत्म-अनात्म-विवेक के माध्यम से संभव है, अर्थात आत्मा और प्रकृति को पूर्णतः पृथक समझना। सांख्याचार्यों ने इस विवेक को विवेक-ख्याति कहा है। जब पुरुष अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को पहचान लेता है, तब वह बंधनों और दुःखों से मुक्त हो जाता है।"[7] योग दर्शन में भी मोक्ष के लिए अविद्या का नाश और तत्वज्ञान प्राप्ति है। योग में इसके लिए यम, नियम, ध्यान, धारणा जैसे उपाय बताए गए हैं, जो चित्त को एकाग्र करने और आत्मा की वास्तविक प्रकृति को समझने में सहायक हैं। हालाँकि योग इन

Vol. 14, Issue: 01, January: 2026
(IJRSML) ISSN (P): 2321 - 2853

साधनों को अपनाने पर जोर देता है, फिर भी मूल उद्देश्य ज्ञानार्जन और अविद्या का नाश है। इस प्रकार सांख्य और योग दोनों दर्शन मोक्ष में ज्ञान-मार्ग को मुख्य साधन मानते हैं, लेकिन योग ने इसे अभ्यासात्मक और व्यवहारिक रूप देकर सरल और उपलब्ध बनाने का प्रयास किया है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार आत्मा स्वभावतः चैतन्य और अनुभव से रहित है, किंतु अज्ञान के कारण वह अपने आप को शरीर, इन्द्रियों और मन से जोड़ लेती है। यही मिथ्या तादात्म्य आत्मा के बंधन का कारण बनता है। जब आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तब वह इन सांसारिक बंधनों और दुःखों से मुक्त हो जाती है।

इसलिए मोक्ष के लिए यह आवश्यक है कि आत्मा का यह मिथ्या ज्ञान पूर्णतः नष्ट हो जाए। यह केवल तत्त्व-ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान द्वारा ही संभव है। तत्त्व-ज्ञान का अर्थ है आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप में ठीक-ठीक जान लेना। तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति के लिए न्याय–वैशेषिक दर्शन भी योग दर्शन के साधनों (यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि) श्रवण, मनन और निदिध्यासन को आवश्यक मानते हैं। इसके साथ ही वे नित्य और नैमित्तिक कर्मों तथा निष्काम भाव से किए गए कर्मों के महत्व को भी स्वीकार करते हैं। परंतु ये कर्म मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन नहीं, बल्कि ज्ञान-प्राप्ति में सहायक साधन माने जाते हैं। उनके अनुसार मोक्ष का मुख्य साधन तत्त्व-ज्ञान ही है।

"अद्वैत वेदांत के अनुसार अविद्या का नाश तत्त्व-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान से संभव है। ब्रह्म-ज्ञान का अर्थ है कि जीव अपने आप को ब्रह्म के साथ पूर्ण तादात्म्य का अनुभव कर पाता है। इस अनुभव से जीव संसार के बंधनों और दुःखों से मुक्त हो जाता है। शंकर ने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए शारीरिक और मानसिक शुद्धि को आवश्यक माना है। इसके लिए उन्होंने साधक के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए। जिसमें वैराग्य और स्वार्थ-त्याग (सांसारिक भोगों का परित्याग), मानसिक संयम और इन्द्रिय-निग्रह (मन और इन्द्रियों का नियंत्रण), सद्गुण और परोपकार (धर्म और समाज के प्रति निष्ठा), योगाचार्यों द्वारा प्रतिपादित उपाय (यम, नियम, ध्यान, धारणा) आदि है। इसके अतिरिक्त, शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के चार साधन अर्थात् साधन-चतुष्टय का उल्लेख किया है जिसके अनुसार नित्यानित्य-वस्तु-विवेक (नित्य आत्मा और अनित्य संसारिक वस्तुओं में भेद जानना), इहामुत्रार्थ फल-भोग-विराग (लौकिक और पारलौकिक भोगों की कामना का परित्याग), शम-दमादि षट् संपत्ति (शम, दम, श्रद्धा, समाधि, उपरति, तितिक्षा इन छः साधनों का प्रयोग अर्थात मानसिक संयम, इन्द्रिय-निग्रह, वेदों और गुरु के प्रति निष्ठा, ज्ञान में लगन, बाहरी दुष्प्रभाव से दूरी, कठिनाइयों को सहने की क्षमता), मुमुक्षत्व (मोक्ष प्राप्त करने की प्रबल इच्छा)। शंकर के अनुसार ये सभी साधन साधक को तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ बनाते हैं, जो उसकी मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। शंकर के मतानुसार मोक्ष प्राप्ति के लिए केवल साधन-चतुष्टय ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने की तीन विशेष विधियाँ भी अत्यंत आवश्यक हैं। ये तीन विधियां हैं:श्रवण, मनन और निदिध्यासन। श्रवण का अर्थ है, गुरु के मुख से ब्रह्म से संबंधित उपदेशों को श्रद्धा और ध्यानपूर्वक सुनना। मनन का अर्थ है, इन उपदेशों पर तर्कपूर्वक और गम्भीर विचार करना, ताकि किसी प्रकार का संदेह शेष न रहे। निदिध्यासन का अर्थ इन उपदेशों को जीवन में उतारना और निरन्तर अभ्यास द्वारा उन्हें आत्मसात करना है। इन तीनों विधियों के निरन्तर अभ्यास से शिष्य ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनता है। ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के बाद साधक यह अनुभव करता है कि अहं ब्रह्मास्मिअर्थात मैं ही ब्रह्म हूँ। शंकर के अनुसार इस ज्ञान से कोई नई वस्तु प्राप्त नहीं होती, बल्कि जीव केवल अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्मको पुनः पहचान लेता है। यही अवस्था मुक्ति या मोक्ष कहलाती है।"[8]

यद्यपि सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक और अद्वैत वेदांत सभी आत्म-ज्ञान को मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं, फिर भी आत्म-ज्ञान के स्वरूप के विषय में वे एकमत नहीं हैं। न्याय–वैशेषिक के आत्म-ज्ञान का अर्थ आत्मा को शरीर, इन्द्रियों और मन से पृथक तथा अनुभव और चैतन्य से रहित सत्ता के रूप में जानना है। सांख्य दर्शन आत्म-ज्ञान या विवेक का अर्थ है पुरुष को प्रकृति और उसके गुणों से पूर्णतः पृथक, विशुद्ध चैतन्य तत्त्व के रूप में जान लेना। इसे ही विवेक-ख्याति कहा गया है।अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्म-ज्ञान का अर्थ आत्मा और ब्रह्म की पूर्ण अभिन्नता की अपरोक्ष अनुभूति है। जब साधक को यह साक्षात् अनुभव हो जाता है कि अहं ब्रह्मास्मितभी वह आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करता है। सभी दर्शन तत्त्व-ज्ञान को मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं, लेकिन आत्मा के स्वरूप की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण आत्म-ज्ञान की अवधारणा भी प्रत्येक दर्शन में अलग-अलग रूप में प्रस्तुत होती है। यही कारण है कि एक ही

Vol. 14, Issue: 01, January: 2026
(IJRSML) ISSN (P): 2321 - 2853

ज्ञान-मार्ग को स्वीकार करते हुए भी भारतीय दर्शनों में दार्शनिक विविधता और गहराई दिखाई देती है।

२) कर्म मार्ग– अधिकांश भारतीय दर्शन कर्मों को बंधन का कारण माना गया हैं, लेकिन सभी कर्म बंधनकारी नहीं होते है। जो कर्म स्वार्थ, लाभ या फल-प्राप्ति की इच्छा से किए जाते हैं, उन्हें काम्य कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म राग, द्वेष, मोह और अहंकार को बढ़ाते हैं और मनुष्य को बंधन में डालते हैं। इसके विपरीत, जो कर्म फल की इच्छा के बिना, केवल कर्तव्य-भाव और लोक-कल्याण के लिए किए जाते हैं, उन्हें निष्काम कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म मनुष्य को बंधन में नहीं डालते, बल्कि उसके अहंकार और स्वार्थ को नष्ट करके उसे मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। इसी कारण निष्काम कर्मों को मुक्ति का साधन माना गया है। "भगवद्गीता में ज्ञान और भक्ति के साथ-साथ निष्काम कर्म को भी मोक्ष का मार्ग स्वीकार किया गया है। गीता के अनुसार जो व्यक्ति फल-आकांक्षा का त्याग करके केवल लोक-संग्रह और कर्तव्य-पालन के लिए अपने स्वधर्म के अनुसार कर्म करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, राग-द्वेष आदि द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता है। वह अपने लिए फल की कामना नहीं करता, बल्कि कर्तव्य को ही अपना लक्ष्य मानता है। संसार में रहते हुए भी वह उसके बंधनों और दुःखों से मुक्त हो जाता है। गीता में ऐसे मुक्त व्यक्ति को कर्म-योगी और स्थितप्रज्ञ कहा गया है। वह स्वार्थ और अहंकार से रहित होकर अपना पूरा जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर देता है। ऐसी अवस्था को ही गीता में मानव-जीवन का परम लक्ष्य माना गया है।"[9] मीमांसा दर्शन में मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म-योग को ही प्रमुख और अनिवार्य साधन माना गया है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य का परम कर्तव्य वेद-विहित कर्मों का विधिपूर्वक पालन करना है, क्योंकि कर्म ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है। "मीमांसा दार्शनिक यह मानते हैं कि संसार में बंधन और दुःख का कारण कर्मों का अभाव नहीं, बल्कि अनुचित और निषिद्ध कर्मों का आचरण है। अतः मोक्ष के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों का नियमित रूप से पालन करे और समस्त निषिद्ध कर्मों का पूर्णतः त्याग करे। नित्य कर्मों अर्थात जैसे संध्या-वंदन, अग्निहोत्र आदि इस कर्म से पापों का नाश और आत्मा की शुद्धि होती है। नैमित्तिक कर्म विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न दोषों के निवारण के लिए किए जाते हैं। जैस जन्म, मृत्यु, ग्रहण, संस्कार आदि। निषिद्ध कर्मों का त्याग अर्थात् वेद-वर्जित कर्मों का पूर्ण परित्याग क्योंकि ये कर्म बंधनों और पापों को बढ़ाते हैं। मीमांसा दर्शन काम्य कर्मों को मोक्ष का साधन नहीं माना गया है, क्योंकि वे फल-इच्छा से किए जाते हैं और स्वर्ग आदि सीमित तथा अस्थायी फलों को प्रदान करते हैं, जिससे आत्मा पुनः कर्म-बंधन में पड़ जाती है। इसके विपरीत, नित्य और नैमित्तिक कर्म फलासक्ति रहित होकर किए जाते हैं, अतः वे न तो नवीन कर्म-बंधन उत्पन्न करते हैं और न ही आत्मा को संसार-चक्र में बाँधते हैं। इन कर्मों के निरंतर पालन तथा निषिद्ध कर्मों के त्याग से पूर्व संचित पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं और आत्मा धीरे-धीरे दुःखों से मुक्त होने की स्थिति में पहुँच जाती है।"[10]

मीमांसा दर्शन में मोक्ष के लिए आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान या ईश्वर-कृपा की अनिवार्यता स्वीकार नहीं की गई है। यहाँ वेद स्वयं प्रमाण हैं और वेदों द्वारा निर्दिष्ट कर्मों का पालन ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग माना गया है। मीमांसा के अतिरिक्त न्याय-वैशेषिक, अद्वैत वेदांत तथा विशिष्टाद्वैत परंपराओं में भी कर्म-योग को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मोक्ष का मार्ग माना गया है। न्याय दर्शन में मोक्ष का मुख्य साधन तत्त्व-ज्ञान है,किन्तु नित्य और नैमित्तिक कर्मों को ज्ञान-प्राप्ति में सहायक माना गया है। निष्काम भाव से किए गए कर्म चित्त-शुद्धि करते हैं, जिससे आत्म-ज्ञान संभव होता है। इस प्रकार कर्म-योग को मोक्ष का सहायक साधन स्वीकार किया गया है। वैशेषिक दर्शन भी न्याय के समान कर्मों को मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन नहीं, बल्कि ज्ञान-प्राप्ति का सहायक माध्यम मानता है। नित्य-नैमित्तिक कर्म आत्मा को दोषों से मुक्त करते हैं और मोक्ष की ओर अग्रसर करते हैं। शंकराचार्य ने कर्म-योग को चित्त-शुद्धि का अनिवार्य साधन माना है। निष्काम कर्म साधक को वैराग्य और विवेक प्रदान करता है, जिससे ब्रह्म-ज्ञान संभव होता है। अतः कर्म-योग यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से मोक्ष-मार्ग है। रामानुज ने कर्म-योग को भक्ति-योग की भूमिका के रूप में स्वीकार किया गया है। निष्काम कर्म से चित्त शुद्ध होता है और ईश्वर-भक्ति संभव होती है, जिससे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः ये सभी दर्शनों में निष्काम कर्म को मोक्ष-प्राप्ति में सहायक माना गया है, यद्यपि वे इसे अंतिम साधन नहीं, बल्कि ज्ञान-प्राप्ति में सहायक मानते हैं।

३) भक्ति मार्ग – भारतीय परंपरा में भक्ति की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं। वेदों में देवताओं की स्तुति, उपनिषदों में एक ईश्वर की उपासना, रामायण

Vol. 14, Issue: 01, January: 2026
(IJRSML) ISSN (P): 2321 - 2853

और महाभारत में आदर्श भक्तों के चरित्र तथा पुराणों में भक्ति के विविध रूप इसका प्रमाण हैं। भगवद्गीता में भी ज्ञान और कर्म के साथ भक्ति को मोक्ष का साधन माना गया है, किंतु भक्ति का सर्वाधिक विकसित और दार्शनिक स्वरूप वैष्णव दर्शन में दिखाई देता है, जहाँ भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र और सर्वोच्च मार्ग स्वीकार किया गया है। यद्यपि भक्ति के स्वरूप को लेकर इन दार्शनिकों में मतभेद है, फिर भी सभी इस तथ्य पर सहमत हैं कि निष्काम भाव से ईश्वर के प्रति किया गया पूर्ण आत्म-समर्पण ही सच्ची भक्ति है। सच्चा भक्त वह है जो किसी सांसारिक फल की कामना किए बिना अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर को अर्पित कर देता है और इसी समर्पण में परम आनंद का अनुभव करता है। वह अपने समस्त कर्म ईश्वर-भाव से करता है और केवल ईश्वर-कृपा की ही आकांक्षा रखता है। इसमें भक्त तथा आराध्य के द्वैत का होना अनिवार्य है। भक्त एवं आराध्य में इस द्वैत के अतिरिक्त भक्ति के लिए आराध्य का सगुण, साकार तथा व्यक्तित्वसंपन्न होना भी अनिवार्य है। भक्त ऐसे ही आराध्य की उपासना कर सकता है जो उसकी प्रार्थना सुनता है और संकट-काल में उसकी सहायता करता है। इसी कारण भक्त सगुण, साकार और व्यक्तित्वसंपन्न ईश्वर की सत्ता में ही विश्वास करता है। व्यक्तित्वरहित, निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म की पूजा करना उसके लिए संभव नहीं है, क्योंकि वह उपासना का विषय नहीं हो सकता। भक्ति के लिए उपर्युक्त दोनों तत्त्वों के साथ-साथ भक्त के मन में अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना का होना भी आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर वह अपने आराध्य को सर्वगुणसंपन्न तथा अत्यधिक महान और उसकी तुलना में अपने आपको अत्यंत तुच्छ मानता है। आराध्य के प्रति भक्त की पूर्ण शरणागति की इसी अवस्था को 'प्रपत्ति' की संज्ञा दी जाती है। परंतु उसमें ऐसी श्रद्धा की उत्पत्ति तभी संभव है जब उसका अहंकार पूर्णतः नष्ट हो जाए और वह अपने आराध्य के प्रति पूर्ण निष्ठा तथा आत्म-समर्पण की भावना का अनुभव करें। भक्ति के आधारभूत तत्वों की विवेचना के पश्चात उसके वर्गीकरण पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। भक्त के प्रयोजन की दृष्टि से भक्ति को मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया गया है— हैतुकी (गौणी) भक्ति और अहैतुकी (मुख्या या परा) भक्ति। हैतुकी भक्ति वह है जिसमें भक्त अपने आराध्य ईश्वर की उपासना सांसारिक सुख, समृद्धि, धन, यश अथवा अन्य भौतिक लाभों की प्राप्ति के उद्देश्य से करता है। ऐसी भक्ति निष्काम न होकर स्वार्थ से प्रेरित होती है, इसलिए इसे निम्नकोटि की भक्ति माना गया है और गौणी भक्ति की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार की भक्ति में ईश्वर की आराधना स्वयं साध्य न होकर साधन मात्र बन जाती है, जिसके कारण यह मनुष्य को मोक्ष की ओर नहीं, बल्कि सांसारिक बंधनों की ओर ले जाती है। इसी कारण भगवद्गीता में ऐसी स्वार्थपूर्ण भक्ति को निकृष्ट और त्याज्य बताया गया है। इसके विपरीत अहैतुकी भक्ति वह है जिसमें भक्त निष्काम भाव से, प्रेम और श्रद्धा से प्रेरित होकर ईश्वर की आराधना करता है तथा उसके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर देता है। इसमें भक्त ईश्वर से किसी प्रकार के फल या प्रतिफल की कामना नहीं करता, बल्कि भक्ति को ही अपना परम साध्य मानता है। ऐसी निस्स्वार्थ भक्ति को गीता में उच्चकोटि की सच्ची भक्ति कहा गया है और इसे अनन्य, मुख्याअथवा परा भक्तिकी संज्ञा दी गई है। इस भक्ति के अंतर्गत ईश्वर का निरंतर स्मरण, कीर्तन, श्रवण, पूजन, अर्चना तथा समस्त कर्मों का ईश्वर को समर्पण किया जाता है। गीता के अनुसार केवल यही निष्काम और अहैतुकी भक्ति मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाती है। भगवान कृष्ण का स्पष्ट मत है कि ऐसी निस्स्वार्थ भक्ति द्वारा ही मनुष्य संसार के बंधनों से मुक्त होकर परम मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, वैष्णव दर्शन में भक्ति का सर्वाधिक विकास हुआ है। “रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ तथा चैतन्य जैसे वैष्णव दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य ईश्वर के प्रति पूर्ण प्रेम और आत्मसमर्पण द्वारा ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतः वैष्णव दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग की अपेक्षा भक्ति-मार्ग अथवा भक्ति-योग को ही प्रमुख और पर्याप्त साधन माना गया है। इनके अनुसार मोक्ष के लिए ईश्वर-कृपा अनिवार्य है, जो केवल भक्ति के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है। आत्म-ज्ञान अथवा निष्काम कर्म के द्वारा मनुष्य केवल अपने प्रयास से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञान और कर्म का महत्व केवल इतना है कि वे भक्त के चित्त की शुद्धि करके उसमें भक्ति के उदय और विकास में सहायक होते हैं। ईश्वर की सतत आराधना तथा उसकी पूर्ण शरणागति द्वारा ही जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। रामानुज के अनुसार निष्काम भक्ति अथवा प्रपत्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर जीव के समस्त क्लेशों और बंधनों का नाश कर देता है और इसी ईश्वर-कृपा के फलस्वरूप जीव मोक्ष प्राप्त करता है। अन्य वैष्णव दार्शनिक भी मूलतः इसी मत को स्वीकार करते हैं। यद्यपि

सभी वैष्णव दार्शनिक भक्ति को मोक्ष का मुख्य साधन मानते हैं, तथापि भक्ति के स्वरूप को लेकर उनके मतों में भेद पाया जाता है। रामानुज और मध्व के अनुसार भक्ति के लिए दास्यभाव अनिवार्य है, अर्थात भक्त स्वयं को ईश्वर का दास मानकर उसकी आराधना करता है। ये आचार्य ईश्वर के ऐश्वर्य को प्रधानता देते हैं और भक्त तथा ईश्वर के संबंध को सेवक–स्वामी का संबंध मानते हैं। इसके विपरीत चैतन्य, वल्लभ और निम्बार्क भक्ति के लिए माधुर्यभाव, वात्सल्यभाव अथवा सख्यभाव को आवश्यक मानते हैं और भक्त तथा ईश्वर के बीच प्रेम तथा मैत्री का संबंध स्वीकार करते हैं। किंतु भक्ति के मूल स्वरूप (पूर्ण आत्मसमर्पण) को ध्यान में रखते हुए रामानुज और मध्व का मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि पूर्ण और एकपक्षीय आत्मसमर्पण केवल सेवक द्वारा अपने स्वामी के प्रति ही संभव है। प्रेमी या मित्र के संबंध में ऐसा एकपक्षीय समर्पण अपेक्षित नहीं होता। अतः जब भक्त ईश्वर को अपना स्वामी मानकर उसके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करता है, तभी वह मानसिक अवस्था भक्ति कहलाती है, जो मोक्ष में सहायक होती है। वैष्णव दार्शनिकों के अनुसार भक्ति-मार्ग मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल और सुगम मार्ग है। ज्ञान-मार्ग अत्यधिक बौद्धिक क्षमता की अपेक्षा करता है, जो बहुत कम व्यक्तियों में होती है, जबकि कर्म-मार्ग के लिए प्रबल संकल्प-शक्ति और निरंतर कर्मशीलता आवश्यक होती है। इसके विपरीत भक्ति-मार्ग साधारण मनुष्य के लिए भी सुलभ है। इसके लिए न तो विशेष बौद्धिक प्रतिभा की आवश्यकता है और न ही अत्यधिक कर्मशीलता की। यह मार्ग शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष, जाति-वर्ग भेद से परे सभी के लिए समान रूप से खुला है। सच्चे हृदय से निष्काम भाव से ईश्वर की उपासना करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस मार्ग का अनुसरण कर सकता है। यही कारण है कि मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में भक्ति-मार्ग जनसाधारण में ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहा है। विशेषतः भावुक और संवेदनशील व्यक्तियों के लिए यह मार्ग अत्यंत उपयुक्त माना गया है। उल्लेखनीय है कि भारतीय दर्शनों में केवल वैष्णव दर्शन ही ऐसा है जिसने भक्ति-मार्ग को मोक्ष का प्रमुख और पर्याप्त साधन स्वीकार किया है।”[11]

उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् मोक्ष प्राप्ति के लिए भारतीय दर्शनों द्वारा स्वीकार किए गए तीन प्रमुख मार्गों के संदर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि क्या मोक्ष प्राप्त करने के लिए इन तीनों साधनों का एक साथ समन्वय संभव है? अधिकतर भारतीय दर्शन मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान-मार्ग को ही प्रधान साधन मानते हैं। न्याय, वैशेषिक और वेदांत जैसे दर्शन निष्काम कर्मों को चित्त-शुद्धि के लिए उपयोगी अवश्य मानते हैं, किंतु वे उन्हें केवल ज्ञान-प्राप्ति में सहायक साधन स्वीकार करते हैं, मोक्ष के प्रत्यक्ष साधन के रूप में नहीं। सांख्य दर्शन निष्काम कर्मों को भी ज्ञान-प्राप्ति में सहायक मानने से इनकार करता है। ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अधिकांश भारतीय दर्शनों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय संभव नहीं है, बल्कि इनमें से किसी एक मार्ग को ही मुख्य साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है और शेष साधनों को केवल सहायक या गौण भूमिका प्रदान की जाती है। परंतु मोक्ष प्राप्ति के साधनों के विषय में भगवद्गीता का दृष्टिकोण अन्य भारतीय दर्शनों से कुछ भिन्न प्रतीत होता है। गीता में मोक्ष के तीन प्रमुख साधनों(ज्ञान, कर्म और भक्ति) का सविस्तार विवेचन किया गया है। इसी कारण विभिन्न दार्शनिकों ने अपने-अपने सिद्धांतों के अनुरूप गीता के मत की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं। शंकराचार्य के अनुसार गीता ज्ञान-योग को ही मोक्ष का प्रमुख साधन मानती है, जबकि रामानुज का मत है कि गीता में भक्ति-योग को ही मुक्ति का मुख्य मार्ग स्वीकार किया गया है। इन दोनों मतों से असहमति प्रकट करते हुए बाल गंगाधर तिलक का विचार है कि गीता के अनुसार कर्म-योग ही मोक्ष का प्रधान साधन है। उल्लेखनीय है कि ये सभी विचारक अपने-अपने मत की पुष्टि के लिए गीता के श्लोकों का सहारा लेते हैं। गीता के समन्वयात्मक दृष्टिकोण अनुसार जब मनुष्य तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह केवल लोक-संग्रह अथवा समाज-कल्याण के लिए निष्काम भाव से कर्म करता है और अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देता है, तभी वह वास्तव में मोक्ष का अधिकारी बनता है।

यहां भारतीय दर्शन में मुख्यतः दो नास्तिक दर्शनबौद्ध दर्शन और जैन दर्शन के मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर भी विचार करना आवश्यक है। “बौद्ध दर्शन में मोक्ष अथवा निर्वाण के उपायों का सविस्तार विवेचन दुःख-निरोध-मार्ग संबंधी चतुर्थ आर्य सत्य के अंतर्गत किया गया है, जिसमें अष्टांगिक मार्गका विशेष महत्त्व है। यह मार्ग मनुष्य को ऐसे नैतिक नियमों का पालन करने का उपदेश देता है जो उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक कल्याण के लिए अनिवार्य हैं। इन नियमों के अनुरूप आचरण करके मनुष्य उन दुःखों से मुक्त हो सकता है जिन्हें वह अपने दुराचरण के कारण स्वयं अपने लिए और दूसरों के लिए उत्पन्न करता है। (१) सम्यक् ज्ञान – चार आर्य सत्यों का समुचित और स्पष्ट ज्ञान, (२) सम्यक् संकल्प – हिंसा, राग-

द्वेष, मोह तथा सांसारिक विषय-भोगों का दृढ़तापूर्वक परित्याग, (३) सम्यक् वचन – अनुचित और मिथ्या वचनों का त्याग करके सत्य के अनुसार आचरण, (४) सम्यक् कर्मात – हिंसा, बुराई, वासना-तुष्टि आदि दुष्कर्मों का परित्याग कर सदैव शुभ कर्म करना, (५) सम्यक् आजीव – उचित एवं न्यायपूर्ण उपायों द्वारा जीविकोपार्जन, (६) सम्यक् व्यायाम – समस्त बुराइयों का नाश करने और सदैव सद्कर्म करने का सतत प्रयास, (७) सम्यक् स्मृति – लोभ, मोह, क्रोध आदि दोषों से मुक्त होकर चित्त की शुद्धि, (८) सम्यक् समाधि – राग-द्वेष आदि द्वंदों के विनाश से उत्पन्न चित्त की पूर्ण एकाग्रता। इन आठ नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने से साधक में प्रज्ञा का उदय होता है, जिसके फलस्वरूप दुःख पूर्णतया नष्ट हो जाता है और वह भवचक्र से मुक्त हो सकता है। इस अष्टांगिक मार्ग का विशेष महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह अतिशय भोगवाद और अत्यधिक कठोर सन्यासवाद—दोनों अतिवादी दृष्टिकोणों का परित्याग कर मध्यम मार्ग अपनाने का उपदेश देता है। बौद्ध दर्शन में अष्टांगिक मार्ग मानव जाति के व्यापक कल्याण और मोक्ष की प्राप्ति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।"[12] "जैन दर्शन ने मोक्ष अथवा कैवल्य की प्राप्ति के लिए जिस मार्ग का प्रतिपादन किया है, वह मूलतः बौद्ध दर्शन के अष्टांगिक मार्ग से भिन्न नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार जीव के बंधन का मूल कारण उसके कर्म हैं। ये कर्म जीव में प्रविष्ट होकर उसके स्वाभाविक गुणों (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सामर्थ्य और अनंत सुख) को आवृत्त कर लेते हैं। शरीर की इच्छाओं के परिणामस्वरूप जीव का पौद्गलिक अथवा भौतिक कर्मों के साथ संयोग होता है, जिससे वह बंधन में पड़ जाता है। जीव तभी इन सांसारिक बंधनों और दुःखों से मुक्त हो सकता है जब वह कर्मों के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो जाए। कर्मों से मुक्ति के मार्ग ही मोक्ष या कैवल्य का मार्ग है। मोक्षदायक तत्त्वों को जीवन में विकसित करने के लिए जीव को निरंतर नैतिक प्रयास करना पड़ता है। इस संदर्भ में जैन दार्शनिकों ने मोक्ष प्राप्ति के लिए जिन नैतिक उपायों को अनिवार्य माना है, उनमें सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र सर्वप्रमुख हैं। इन्हीं तीनों को जैन दर्शन में रत्न-त्रय अथवा त्रिरत्न कहा गया है, और इन्हें कैवल्य-प्राप्ति का अनिवार्य मार्ग माना गया है। जैन दर्शन के अनुसार सम्यक् दर्शन का अर्थ है, तीर्थंकरों तथा उनके द्वारा प्रतिपादित नैतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धांतों के प्रति अखंड, अडिग और प्रगाढ़ श्रद्धा। मोक्ष-प्राप्ति का दूसरा साधन सम्यक् ज्ञान है। तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित समस्त तत्त्वों, सिद्धांतों और नियमों का यथार्थ अध्ययन, मनन और बौद्धिक बोध प्राप्त करना ही सम्यक् ज्ञान कहलाता है। मोक्ष-प्राप्ति का अंतिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन सम्यक् चरित्र है। तीर्थंकरों द्वारा बताए गए नैतिक नियमों और आचार-विधानों का अपने दैनिक जीवन में निष्ठापूर्वक पालन करना ही सम्यक् चरित्र कहलाता है। वस्तुतः जब तक श्रद्धा और ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में आचरण के रूप में रूपांतरण नहीं होता, तब तक उनका कोई वास्तविक मूल्य नहीं है। त्रिरत्न के अतिरिक्त जैन दार्शनिकों ने मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक साधक के लिए पंच महाव्रतों, समितियों, गुप्तियों और अनुप्रेक्षाओं आदि का पालन भी आवश्यक माना है। इनमें पंच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। जैन दर्शन में अहिंसा का अर्थ केवल किसी प्राणी को शारीरिक कष्ट न पहुँचाना नहीं है, बल्कि मन, वचन और कर्म से किसी भी जीव को दुःख न देना तथा सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, करुणा और सद्भाव रखते हुए यथाशक्ति सेवा करना है। सत्य का अर्थ है मन, वचन और कर्म की एकरूपता बनाए रखना, किसी प्रकार का छल-कपट न करना तथा प्रिय और हितकर वाणी का प्रयोग करना। अस्तेय का तात्पर्य है—बिना अनुमति किसी की वस्तु न लेना और चोरी की प्रवृत्ति का पूर्ण त्याग। ब्रह्मचर्य का अर्थ है प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी प्रकार की वासनाओं से संयम तथा पूर्ण इंद्रिय-निग्रह। अंतिम महाव्रत अपरिग्रह है, जिसका अर्थ है भौतिक वस्तुओं और सांसारिक भोगों के प्रति आसक्ति का त्याग तथा धन-संपत्ति के संचय से विरक्ति। बौद्ध दर्शन में इन्हें पंचशील और योग दर्शन में यम कहा गया है। महात्मा गाँधी का संपूर्ण नैतिक दर्शन भी मुख्यतः इन्हीं महाव्रतों पर आधारित है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन और संस्कृति में इन नैतिक मूल्यों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। त्रिरत्नों और पंच महाव्रतों के अतिरिक्त जैन दार्शनिकों ने शारीरिक तथा मानसिक संयम की दृष्टि से कुछ समितियों और गुप्तियों के पालन को भी अनिवार्य माना है। जैन दार्शनिकों ने मनुष्य के लिए पाँच समितियों का उल्लेख किया है–ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-निक्षेपण-समिति, उत्सर्ग-समिति। ईर्या-समिति का तात्पर्य है, हिंसा से बचने के लिए सावधानीपूर्वक चलना-फिरना, जिससे किसी भी जीव को अनजाने में कष्ट न पहुँचे। भाषा-समिति के अंतर्गत साधक को नम्र, मधुर, सत्य और अहिंसक वाणी का प्रयोग करने का उपदेश दिया गया है। एषणा-समिति का अर्थ है, नियमों के अनुरूप और शुद्ध उपायों से भिक्षा या भोजन ग्रहण करना। आदान-निक्षेपण-समिति के अनुसार किसी भी वस्तु को उठाने या रखने में पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए, ताकि किसी सूक्ष्म जीव की हिंसा न हो। उत्सर्ग-समिति का आशय है, मल-मूत्र आदि का विसर्जन केवल निर्जन स्थानों में और सावधानीपूर्वक करना। इन समितियों का उद्देश्य मनुष्य को दैनिक जीवन में अधिकतम अहिंसा और आत्म-संयम की ओर उन्मुख करना है। इन समितियों के साथ-साथ जैन दर्शन में गुप्तियों के

पालन को भी आवश्यक माना गया है। जैन दार्शनिक गुप्तिशब्द का प्रयोग संयम या नियंत्रण के अर्थ में करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का समुचित नियंत्रण ही गुप्ति कहलाता है। इस दृष्टि से उन्होंने तीन गुप्तियों का वर्णन किया है: काय-गुप्ति, अर्थात् शरीर की क्रियाओं का संयम, वाक्-गुप्ति, अर्थात् वाणी का नियंत्रण, और मनोगुप्ति, अर्थात् मन और विचारों का संयम। ये गुप्तियाँ साधक को कर्म-बंधन से मुक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त जैन दार्शनिकों ने मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक प्रत्येक साधक के लिए दशधर्मों के अनुसार आचरण करना भी अनिवार्य माना है। ये दस धर्म हैं—सत्य, क्षमा, शौच, तप, संयम, त्याग, विरक्ति, मार्दव (नम्रता), सरलता तथा ब्रह्मचर्य। जैन दर्शन के अनुसार इन धर्मों का निरंतर पालन मनुष्य के चित्त को शुद्ध करता है, उसके कर्मों के प्रवाह को रोकता है और अंततः उसे मोक्ष या कैवल्य-प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है। चूँकि जैन दर्शन निर्विश्ववादी है, इसलिए इसमें मोक्ष प्राप्ति के लिए ईश्वर-भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी तीर्थंकरों के प्रति श्रद्धा को आवश्यक माना गया है, क्योंकि उनका मार्गदर्शन और उपदेश साधक को मोक्ष के पथ पर अग्रसर करता है।”[13] इस दृष्टि से जैन दर्शन बौद्ध दर्शन के समान ही मानता है कि मुक्ति प्राप्ति में सर्वाधिक महत्त्व मनुष्य के अपने प्रयास का है।

संदर्भ सूची:

- डॉ रमेंद्र;“समाज और राजनीतिक दर्शन एवं धर्म दर्शन”;मोतीलाल बनारसीदास,पटना, 2010, पृ.सं.410
- प्रो० हरेंद्र प्रसाद सिंह;“भारतीय दर्शन की रूपरेखा”;मोतीलाल बनारसीदास, पटना,2012,पृ.सं.19–20
- वहीं;पृ.सं. 21
- डॉ रामनारायण व्यास; “धर्म दर्शन”; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल,1988,पृ. सं.182–183
- डॉ. कु.रत्न देव;“नीति–दर्शन की रूपरेखा”;मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी,भोपाल,1989,पृ.स. 195
- या० मसीह;“तुलनात्मक धर्म·दर्शन”;मोतीलाल बनारसीदास,पटना, 2008, पृष्ठ सं. 1
- अशोक कुमार वर्मा; “नीतिशास्त्र की रूपरेखा:पाश्चात्य और भारतीय”; मोतीलाल बनारसीदास, पटना,2013,पृ.सं.378
- वेद प्रकाश वर्मा; “ धर्मदर्शन की मूल समस्याएं”; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,2010, पृष्ठ सं.395–396
- वहीं; पृष्ठ सं.398
- प्रो० हरेंद्र प्रसाद सिंह;“भारतीय दर्शन की रूपरेखा”;मोतीलाल बनारसीदास, पटना,2012,पृ.सं. 289–292.
- वहीं; पृष्ठ सं.330–332
- डॉ रामनाथ शर्मा; “धर्म–दर्शन”; केदारनाथ रामनाथ एंड कंपनी, मेरठ,1986-87,पृ. सं.221–223
- वेद प्रकाश वर्मा; “ धर्मदर्शन की मूल समस्याएं”; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,2010, पृष्ठ सं.403–405